आदर्श विवेचनात्मक प्रश्न

(Model Subjective Questions)

प्रश्न 1

उन हालातों या परिस्थितियों की विवेचना कीजिए जिसके कारण कांग्रेस ने खिलाफत तथा असहयोग आंदोलन में समझौता किया। क्या यह राजनीतिक दृष्टि से उचित निर्णय था? (2007)

उत्तर 1

प्रथम विश्व युद्ध का समापन अनेकों समस्याओं को साथ लेकर आया। इसने शांति की बजाय विश्व राजनीति में उथल-पुथल का आरंभ किया। पेरिस शांति कांफ्रेंस (1917-20) जो विश्व में एक नये राजनीतिक समीकरण बनाने के लिए हुआ ने काफी समस्याएं पैदा कीं। विश्व के अनेक देशों के मुसलमान, जिसमें भारत के मुस्लिम भी शामिल थे इस बात को लेकर चिंतित थे कि युद्ध के पश्चात् खलीफा (धार्मिक गुरु) तुर्की तथा पश्चिमी एशिया के धार्मिक स्थानों की स्थिति पर क्या विपरीत असर पड़ेगा। इसी प्रकार राष्ट्रवादी नेता तथा लोगों के पास भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अंसतोष के अनेक मुद्दे थे। इस प्रकार राष्ट्रीय मुद्दे तथा खिलाफत का प्रश्न एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन का आधार तैयार कर चुका था।

प्रथम युद्ध की शुरुआत से पहले, ब्रिटिश सरकार ने भारत में संवैधानिक सुधारों को युद्ध पश्चात् लागू करने का वायदा किया परंतु युद्ध के बाद उन्होंने भारतीयों को रोलेट् एक्ट का तोहफा दिया जो राजनीतिक अधिकारों को कुचलने की एक रणनीति थी, जिसके अनुसार, किसी को भी विशेष न्यायालय द्वारा बंदी बनाकर दो वर्ष तक कैद किया जा सकता था। इस एक्ट के द्वारा पुलिस को असीमित शक्तियां प्रदान की गईं, जिससे भारतीयों में रोष तथा भय था।

भारत में लगभग सभी राजनीतिक पार्टियों ने इस एक्ट का विरोध किया—गांधी जी ने पुराने होम रूल लीग के सदस्यों, पेन इस्लामिक सदस्यों—जैसे, फिरंगी महल के अब्दुल बारी, अली बंधु (मोलाना मोहम्मद अली जौहर व शौकत अली) वजीर हसन, मोहम्मदाबाद के राजा मुख्तार अहमद अंसारी इत्यादि की सहायता से सत्याग्रह सभा का गठन किया। हालांकि विरोध भारत के अनेक हिस्सों में हुआ परंतु पंजाब में इसका असर सबसे ज्यादा रहा। 1917-1919 के दौरान अनाज के दानों में 100% से ज्यादा की बढ़ोतरी हुई थी। मुहम्मद इकबाल तथा ज़फ़र इकबाल ने मुसलमानों में जन-जागरण की शुरुआत की।

इसके साथ –साथ पंजाब में आर्य समाजियों की गतिविधियों ने भी मुसलमानों में धर्म के प्रति नई चेतना लाने में योगदान दिया। लाहौर की बादशाही मस्जिद में पीपल्स कमेटी का गठन हुआ, जिसने 11 अप्रैल से लेकर 14 अप्रैल, 1919 तक शहर पर नियंत्रण रखा—पंजाब के अलावा दिल्ली तथा कलकत्ता में भी रोलेट सत्याग्रह का काफी असर रहा। दिल्ली में बेरोजगार दस्तकारों तथा निम्न मध्यवर्गीय हिंदुओं ने प्रमुख मुस्लिम नेताओं, जैसे—एम.ए. अन्सारी, हकीम अजमल खां के साथ मिलकर धरना तथा हड़ताल प्रदर्शनों में मार्च 1919 से लेकर 18, अप्रैल 1919 तक भाग लिया। परन्तु 13, अप्रैल 1919 को जलियांवाला बाग कांड के कारण देश तथा गांधी जी स्तब्ध रह गए। उन्होंने रोलेट सत्याग्रह को एक हिमालयी भूल बताते हुए इस आंदोलन को 18, अप्रैल 1919 को स्थगित कर दिया।

राष्ट्रवादी आंदोलन कुछ समय के लिए शिथिल अवश्य पड़ गया था परंतु भारत में मुसलमानों के कुछ वर्गों ने खिलाफत के प्रश्न को लेकर खिलाफत आंदोलन की शुरुआत की है 'खिलाफत' का शाब्दिक अर्थ है—शासक। यह अरबी भाषा का शब्द, जिसका प्रयोग इस्लामी देशों तथा अरब के राजाओं के लिए प्रयुक्त होता है। उस काल में तुर्की के खलीफा को कुछ मुसलमान अपना या इस्लाम का आध्यात्मिक तथा राजनीतिक नेता मानते थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने (इंग्लैड़, फ्रांस, अमेरिका इत्यदि) ने जर्मनी पर 'वर्साय की संधि' थोपी तथा जिससे उसका अत्यधिक अपमान हुआ (जून 1919) इस प्रकार की असम्मानजनक संधि—तुर्की के साथ भी की जाने की योजना क्योंकि प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की ने जर्मनी को सहयोग दिया था।

मित्र राष्ट्रों विशेषकर ब्रिटेन पर दबाव बनाने के लिए कुछ मुस्लिम देशों में खिलाफत आंदोलन की शुरुआत की गई, इस प्रकार यह एक पेन-इस्लामी या अखिल-सर्व इस्लामी आंदोलन में परिवर्तित हो गया। भारत में खिलाफत समिति की स्थापना बंबई में अली बंधुओं (मौलाना मोहम्मद अली जौहर तथा शौकत अली) ने की। इसके अन्य सदस्य थे—हकीम अजमल खां, मौलाना आजाद तथा डा. मुख्तार अहमद अंसारी। सभी लोग धार्मिक वर्ग उलेमा तथा मध्यम वर्गीय मुसलमान थे।

मोहम्मद अली ने मार्च 1920 में पेरिस में राजनायिकों के सामने एक प्रस्ताव पेश किया, जिसकी प्रमुख मांगें थीं—

- खलीफा को सभी मुस्लिम धार्मिक स्थलों का नियंत्रण सौंपा जाए। जैसे—मक्का, मदीना तथा अक्सा (जेरुसलम)।
- खलीफा के पास इतना नियंत्रण दिया जाए, जिससे कि वह एक भूभाग पर रह कर सभी मुस्लिम धार्मिक स्थलों को तथा इस्लाम की रक्षा तथा उसका रक्षक बना रह सके।
- जज़ीरत-उल-अरब (अरेबिया, सीरिया, इराक, फिलिस्तान इत्यादि) पर मुस्लिम सार्वभौमिकता पूर्ण रूप से रहे।

खिलाफत समिति के जो सदस्य ऊ.प्र. बंगाल, सिंध तथा मालाबार प्रदेशों या निम्नवर्गीय परिवारों से संबंधित थे, उन्होंने 17, अक्तूबर 1919 को तथा 19, मार्च 1920 को सार्वजनिक हड़ताल की घोषणा की तथा हिंदु-मुस्लिम एकता के लिए भी कार्य किया। इन सब प्रयासों के बावजूद 10 अगस्त, 1920 को तुर्की पर 'सर्वस की संधि' थोप ही दी गई, जिसके कारण खिलाफत समिति के सदस्यों ने ब्रिटिश, वस्तुओं सेवाओं तथा सरकारी संस्थानों का बहिष्कार करने का निर्णय लिया।

गांधी जी ने भी सुअवसर जानकर कि मुसलमान इस समय ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध पूरी तैयारी में है तथा उनका साथ देकर वह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित कर आंदोलन को मजबूती से शुरू कर सकते हैं। उन्होंने मुस्लिम भावनाओं के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने हेतु ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त कैसर-ए-हिंद सम्मान लौटा दिया तथा देश के अनेक स्थानों का दौरा कर अनेकों सभाओं को संबोधित किया। खिलाफत के नेताओं ने भी गांधी जी को अपना नेता मानकर इस आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाने का आह्वान किया। गांधी जी ने अनेक राजनीतिक ज्वलंत मुद्दों को एकसूत्र में पिरो दिया, जैसे— रौलेट एक्ट, जलियांवाला बाग नरसंहार, द्वैधशासन (1919 के भारत अधिनियम की

व्यवस्था), मंहगाई तथा खिलाफत का मुद्दा। दूसरे शब्दों में गांधी जी ने अनेक धाराओं को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में आत्मसात् कर दिया।

कांग्रेस के कलकत्ता (विशेष) अधिवेशन 4, सितम्बर 1920 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को पारित किया गया परंतु सी.आर. दास, मदन मोहन मालवीय, लाजपत राय, विपिन चंद्र पाल ने इसका विरोध किया। इस प्रस्ताव के अनुसार, विधानमंडलों का बहिष्कार, सरकारी उपाधियों का त्याग, सरकारी न्यायलायों का बहिष्कार, विदेशी वस्त्रों पर प्रतिबंध तथा उनका बहिष्कार व सभी सरकारी संस्थानों का आम जनता द्वारा बहिष्कार इत्यादि करना शामिल था।

इसी के साथ स्वेदशी वस्तुओं के अपनाने पर बल दिया गया। सभी आपसी झगड़ों का निपटारा पंचायतों के द्वारा करने को स्वीकृत किया गया। इस प्रस्ताव का अनुमोदन वार्षिक कांग्रेस अधिवेशन दिसम्बर 1920 में नागपुर में किया गया तथा गांधी जी के अनुसार कांग्रेस में फेर-बदल किया गया।

इस प्रकार खिलाफत मुद्दे तथा असहयोग आंदोलन के मध्य सहयोग समय की मांग के अनुसार था। कई मुस्लिम नेता कांग्रेस तथा खिलाफत आंदोलन के साथ समान रूप से जुड़े हुए थे, इससे यह समझौता तो अवश्यम्भावी था। खिलाफत मुद्दे ने असहयोग आंदोलन को जन-आंदोलन में परिवर्तित होने में बहुत प्रभावी भूमिका अदा की थी।

परंतु खिलाफत का मुद्दा अपनी प्रासंगिकता खो चुका था यह न तो पूर्ण इस्लामी प्रश्न था तथा न ही इसका आम मुसलमानों के जीवन से कुछ लेना देना ही था। अधिकतर भारतीय मुसलमानों को यह भी मालूम नहीं था कि तुर्की कहां पर था और खलीफा (अब्दुल माज़िद तृतीय) का असली नाम क्या था और वह कौन था और स्वयं तुर्की के नेतृत्व ने मुस्तफा कमाल पाशा की अध्यक्षता में खलीफा को गद्दी से उतार दिया था, जिसके लिए भारत के मुसलमान कांग्रेस के साथ मिलकर उसको बचाने के लिए आंदोलन चला रहे थे। कांग्रेस को भी तुर्की में हुई घटनाओं में काफी नीचा देखना पड़ा। क्योंकि खिलाफत मुद्दा पूर्ण रूप से धार्मिक मुद्दा था तथा कांग्रेस की छवि एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी की थी। इसके कारण उसकी इस छवि को काफी नुकसान पहुंचा। मोहम्मद अली जिन्ना समेत अन्य नेता भी राजनीतिक तथा धार्मिक मुद्दों को मिलाने के पक्ष में नहीं थे। भारत में सांप्रदायिकता के कारण इन धार्मिक मसलों को मिलाने का परिणाम भयावह हो सकता है, जहां अनेक वर्गों व धर्मों के लोग सामाजिक रूप से साथ-साथ रहते हों। इस प्रकार कांग्रेस का यह कदम समझदारी भरा तो नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न 2

आप भारतीय कृषि के व्यावसायीकरण से क्या समझते हैं। इसके परिणामों की व्याख्या कीजिए (2006)

उत्तर 2

जब खेती में उगाई जाने वाली फसलों को बाज़ार में बेचे जाने के उद्देश्य से उत्पादित किया जाता है तो हम इसे कृषि का व्यावसायीकरण कहते हैं। कुछ फसलें, जैसे—नील, कपास, गन्ना को केवल बाज़ार में बेचने के लिए उगाया जाता है तथा कुछ अनाजों का उत्पादन भी सिर्फ अपने खाने तथा बेचने दोनों के लिए किया जाता था। इस प्रकार सल्तनत तथा मुगल काल में भूमि कर पैसों में लिया जाता था तथा भारतीय किसान इस तरह की अर्थव्यवस्था से अनभिज्ञ नही थे परंतु भारतीय इतिहास में ब्रिटिश काल की अर्थव्यवस्था की प्रकृति पहले से काफी अलग थी तथा इसका प्रभाव भी बिलकुल नये तरीके का था।

इंग्लैंड में तेजी से औद्योगीकरण होने के कारण भारत में फसलों के उत्पादन करने का ढंग भी बदला। इंग्लैंड के करखानों को उत्पादन के लिए कच्चे माल के रूप में कपास, नील, गेहूं, गन्ने, चाय तथा तंबाकू की आवश्यकता थी। अपने व्यापारिक लाभ को अधिक लाभदायक बनाने के लिए आर्थिक नीतियों को उसी के अनुरूप ढाला गया। उन्होंने भारत में रेलवे, सड़क तथा बंदरगाहों का निर्माण इस उद्देश्य के लिए किया कि भारत से कच्चे माल का निर्यात बिना किसी बाधा के निरंतर होता रहे। भाप के इंजन (1769) के अविष्कार तथा स्वेज नहर (1869) के व्यापारिक मार्ग के खुल जाने के कारण कृषि के कच्चे माल को ले जाना अब और अधिक आसान हो गया था। ब्रिटिश सरकार ने इसको अधिक लाभकारी बनाने के लिए माल ढुलाई पर लिए जाने भारी-भरकम किराए में काफी कटौती की विशेषकर चावल तथा गेहूं के उत्पादन के लिए। उन्होंने भारतीय किसानों को 'नकदी फसलें' उगाने के लिए अधिक प्रोत्साहन दिया। इसके कारण वह (ब्रिटिश) स्वयं अधिक लाभ कमा सकते थे। कुछ स्थानों पर किसानों ने भूमि कर चुकाने के लिए नकदी फसलें उगाईं क्योंकि उन्हें यह भय था कि अनाज को वह स्वयं ही उपभोग कर लेंगे।

इस प्रकार के कृषि व्यवसायिकरण का तरीका भी हर क्षेत्र के लिए अलग-अलग था और यह फसल के अनुसार भी था। चाय बागानों में उत्पादन सीधे गोरे लोगों के स्वामित्व में था तथा वह मजदूरों को दयनीय स्थिति में रखते थे। अन्य स्थानों में अमीर किसान स्वयं ही नकदी फसलों का उत्पादन करते थे। पूर्वी भारत के किसान नील, दक्कन के किसान कपास, उ.प्र. के किसान गन्ना तथा मध्य प्रांत के किसान तबांकू का उत्पादन किया करते थे। अंग्रेज व्यापारी किसानों को अग्रिम पैसा उपलब्ध करवाते थे, जिससे वह नकदी फसल उगा सकें। कभी-कभी वे जमीन को रहन पर लेकर काश्तकारों से खेती करवाते थे, जिनके पास अपनी जमीन नही थी। यह आमतौर पर चाय बागानों में काफी चलन पर था।

कृषि के व्यावसायिकरण ने भारत की कृषि, अर्थव्यवस्था तथा किसानों के जीवन पर प्रभाव डाला तथा इसके साथ-साथ इसने भारतीय कृषि के उत्पादन को भी प्रभावित किया। उदाहरण के लिए अच्छे उत्पादन के लिए कपास के उच्च गुणवत्ता वाले बीज काफी महंगे थे तथा उसके लिए बेहतर सिंचाई व्यवस्था की आवश्यकता थी। इसके कारण किसानों को महाजनों से काफी ऊंचे दामों पर ब्याज का कर्ज लेना पड़ता था। यह महाजनों दिए गए धन से कई गुना वृद्धि पर किसानों से वह पैसा तथा कर्ज़ वसूलते थे तथा लगभग सभी स्थितियों में यह महाजन तथा सूदखोर किसानों को धोखे में रखकर उनसे कई गुना दर से ब्याज लेते थे। इस प्रकार की नकदी फसलें उगाने के क्रम में किसान लगान देने के लिए सिर्फ इन्ही फसलों को उगाते रह जाते थे। अन्य खाद्य फसलें, जैसे—गेहूं, ज्वार, बाजरा तथा दालों का उत्पादन नही हो पाता था और अकाल की स्थिति में किसान भुखमरी के कगार पर पहुंच जाते थे।

कृषि के व्यावसायिकरण के कारण भारतीय कृषि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार के साथ जुड़ गई थी। इन कारणों से अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में वस्तुओं के दामों की स्थिति भारतीय कृषकों की उन्नति में बाधा पहुंचाती थी दक्कन दंगे (1875-79) इसका एक प्रमुख उदाहरण थे। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार से जुड़ने का यह अर्थ भी

था कि अब छोटे व्यापारियों को कच्चे माल की कमी का भी सामना करना पड़ता था क्योंकि कीमतें ऊंची होने के कारण मांग पर मंहगे दामों से वस्तुएं खरीदना अब इन व्यपारियों के लिए संभव नहीं हो पाता था। यही एक मुख्य कारण था कि कृषि-व्यावसायीकरण के कारण भारत में अन-औद्योगीकरण हुआ। कृषि-व्यावसायिकरण के कारण मध्यस्थों का भी बोल-बाला हो गया। वह ग्रामीण क्षेत्रों से अनाज खरीद शहरी क्षेत्रों को निर्यात करते थे, जिसके कारण किसानों को उचित मूल्य नही मिल पाता था क्योंकि दामों पर इन मध्यस्थों या बिचौलियों का नियंत्रण हो जाता था। परंतु गन्ना की खेती पर इन बिचौलियों को अधिक मुनाफा नही मिल पाता था क्योंकि चीनी मिलें गन्ना क्षेत्रों के काफी निकट थीं तथा गन्ने की फसलों को कपास या नील की तरह अधिक समय तक नही रखा जा सकता था तथा वहां पर बिचौलियों या मध्यस्थों का असर ज्यादा नही दिखाई देता था, जहां पर सड़कें अच्छी हालत में थीं तथा किसान इनका उपयोग कर अच्छा मुनाफा कमा पाते थे।

सरकार की भूमि-कर व्यवस्था भी किसानों के प्रति संवेदनहीन थी। अनेक बार यह देखने में आया कि जब नकदी फसलों के बाजार में तेजी आई तो भूमिकर को भी बढ़ा दिया गया, जिसने किसानों की परेशानियों को ओर भी बढ़ा दिया। ऊंचे तबकों वाले किसानों की इच्छा पर यह कृषि व्यावसायीकरण निर्भर था परंतु मंझौले तथा छोटे किसानों के लिये यह एक प्रकार से जबर्दस्ती वाला कार्य था। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह व्यावसायिकरण तर्कसंगत नही था क्योंकि यहां मुक्त बाजार तथा कर की व्यवस्था भी नहीं थी, जिससे किसानों को सस्ता बीज, कामगार, कृषि-औजार, खाद इत्यादि उपलब्ध हो सके परंतु यह फसलों का व्यावसायीकरण था, तो हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश काल में कृषि का व्यावसायीकरण न होकर सिर्फ फसलों का ही व्यावसायीकरण हुआ था।

प्रश्न 3

सब्सिडिरी एलांएज या सहायक संधि की प्रमुख शर्तों की विवेचना कीजिए इसने किस प्रकार ब्रिटिश कंपनी को भारत में सर्वोच्च स्थान पाने में सहायता की? *(2005)*

उत्तर 3

सहायक संधि भी ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अपनाई गई एक प्रमुख नीति थी, जिसके द्वारा कंपनी भारत में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने का प्रयास कर रही थी। अठाहरवीं शताब्दी के काल में कंपनी ने अनेक संधियों का प्रसार किया परंतु सहायक संधि का मुख्य श्रेय गवर्नर-जनरल लार्ड वेलजली (1798-1805) को जाता है, जिसने करीब-करीब एक सौ से भी अधिक संधिया की थीं।

सहायक संधि की शुरुआत करने वाला व्यक्ति था फ्रांसीसी गवर्नर डुप्ले। वह भारतीय रजवाड़ों को अपनी सेवा किराये पर देता था। राबर्ट क्लाइव बंगाल के गवर्नर-जनरल ने भी इसी नीति को अपनाया। क्लाइव ने सन् 1765 में अवध के नवाब के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर कर कंपनी की सेना को अवध की रक्षा करने का अधिकार लिया तथा नवाब से यह वायदा भी लिया कि इस सेना का सारा खर्च अवध वहन करेगा तथा एक ब्रिटिश रेजीडेंट को अवध में नियुक्त किया गया तथा उसकी विदेश नीति को संचालित करने का अधिकार भी कंपनी ने अपने पास रखा था। 1787 में लार्ड कार्नवालिस के गवर्नर जनरल काल के दौरान किसी भी अन्य शक्ति से संबंध बनाने से पहले अवध राज्य की कंपनी की आज्ञा लेने का अधिकार भी अपने पास रख लिया तथा 1798 में अवध नवाब ने यह भी मान लिया कि अन्य कोई भी विदेशी अवध की रियासत में नौकरी पर नही रखा जायेगा। लार्ड वेलज़ली जब भारत आया तो उसका मुख्य उद्देश्य भारत में कंपनी की राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करना था। इसके द्वारा उसने सहायक संधि में यह भी शामिल कर दिया कि संधि करने वाली रियासत को अब एक भूभाग भी कंपनी को सौंपना होगा, जिससे कि वह रियासत पर और अधिक नियंत्रण रख सके।

सहायक संधि का विस्तार चार विभिन्न चरणों में हुआ। पहले कोई भी रियासत पैसे देकर कंपनी की सेना को अपनी सुरक्षा के लिए रख सकती थी। इस प्रकार पहला समझौता हैदराबाद राज्य ने 1768 में कंपनी के साथ किया। दूसरा कोई भी रियासत अपनी रक्षा के लिए वार्षिक फीस अदा कर कंपनी की उस सेना का प्रयोग कर सकती थी, जो उसकी रियासत के आस-पास के राज्यों में स्थित हो। इस प्रकार की संधि सिंधिया ने 1789 में की थी। तीसरे कंपनी की सेना किसी भी रियासत में रहकर अपनी सेवाएं उस राज्य की सुरक्षा के लिए दे सकती थी तथा रियासत को कंपनी की सेना का पूरा खर्चा वहन करना पड़ा था। सन् 1789 में हैदराबाद ने इस प्रकार की संधि की थी, चौथे तथा अंतिम चरण में कंपनी की सेना राज्य में रहकर पैसे न लेकर अपना खर्च चलाने के लिए किसी भी भू-भाग पर हमेशा के लिए अपना शासन स्थापित कर सकती थी। अवध ने सन् 1801 में इस प्रकार की संधि कंपनी से की थी—

- जो भारतीय रियासत कंपनी के साथ सहायक संधि पर हस्ताक्षर कर देती थी तो उसे कंपनी की शर्तें मानने को बाध्य होना पड़ता था।
- जो रियासत कंपनी के साथ संधि करेगी, वह किसी अन्य विदेशी शक्ति (यूरोपीय तथा अमरीकी) के व्यक्ति को नौकरी पर नहीं रख सकता अगर वह विदेशी कंपनी के शत्रु देश का है तो उसे भी किसी प्रकार की नौकरी नहीं दी जा सकती।
- अब विदेशी मामलों में यह रियासतें अपनी संप्रभुक्त स्वंय ही खो देती थीं क्योंकि अब कंपनी द्वारा नियुक्त रेजिडेंट रियासतों के सभी कार्य-कलापों पर अपनी नजर रखते थे।

हांलाकि कंपनी रियासतों के अंदरुनी मामलों में दखल न देने का वायदा भी करती थी परंतु आमतौर पर ऐसा होता नही था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं, सहायक संधि का सबसे अधिक लाभ कंपनी सरकार को ही हुआ क्योंकि इस तरह से वह अपनी प्रतिद्वंद्वी फ्रेंच कंपनी को रियासतों से दूर रखने में कामयाब रही क्योंकि संधि के अनुसार, बिना कंपनी की इजाज़त के किसी यूरोपीय को अपने यहां नौकरी पर नहीं रख सकते थे। सहायक संधि के कारण कंपनी अब किसी भी रियासत के साथ अपने किए गए वायदे को अपनी पसंद अनुसार ढाल सकती थी तथा साथ-साथ वह अनेक रियासतों के आपसी संबंधों पर भी नज़र रख सकती थी। सहायक संधि ने कंपनी की, सैन्य शक्ति का विस्तार किया तथा अब अनेक रियासतों में कंपनी बिना कोई खर्च उठाए अच्छी खासी फौज रख सकती थी तथा जरूरत पड़ने पर इस सेना का प्रयोग किसी अन्य रियासत को हथियाने के लिए भी कर सकती थी। साथ-ही-साथ वह रियासत के अदंरुनी मामले में भी अपनी शक्ति का उपयोग आसानी से कर सकती थी। कंपनी को यही सबसे बड़ा लाभ मिला तथा उसकी स्थिति और भी मजबूत हो गई। जिन भारतीय रियासतों ने इस सहायक संधि को स्वीकार किया था वे पूरी तरह से असहाय हो गए थे तथा कंपनी के हाथों में कठपुतली की तरह नाचते रहे क्योंकि कंपनी की मांग अनुसार उन्हें राज्य का वह सबसे उपजाऊ हिस्सा सौंपना पड़ता था जिससे कि सबसे अधिक आय होती थी तथा इसके कारण यह रियासतें आर्थिक रूप से बरबाद भी हो गई। यह बरबादी कंपनी के लिए अपने आप में भारत में राजनीतिक, आर्थिक तथा सैन्य संगठन के रूप में सबसे शक्तिशाली होने का सुअवसर था, जो कंपनी ने आसानी से प्राप्त कर लिया।

प्रश्न 4

उन कारणों की विवेचना कीजिए जिससे 1905 से 1931 तक भारत में क्रांतिकारी आंदोलन का उद्भव तथा विकास हुआ। *(2003)*

उत्तर 4

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य था क्रांतिकारी आंदोलन। उस काल के अति संवेदनशील युवाओं ने इस आंदोलन का सूत्रपात किया। यह क्रांतिकारी आंदोलन उपनिवेशवादी शोषण तथा अन्याय के ही विरुद्ध नही शुरू हुआ बल्कि उस काल की राजनीतिक व्यवस्था ने ही इस आंदोलन को जन्म दिया। ब्रिटिश प्रशासन ने इसे आतंकवादी करार दिया तथा इसे मात्र कानून और व्यवस्था की समस्या के ही रूप में देखा गया। भारत में क्रांतिकारी आंदोलन की शुरूआत सरकारी नीतियों तथा राजनीतिक घटनाओं के असर के कारण ही हुई।

1892 का इंडियन कौंसिल एक्ट भारत ने निर्वाचन मंडल का विस्तार न कर सका, जिससे राष्ट्रवादियों को भारी निराशा हुई। ब्रिटिश सरकार की सिविल सेवा की परीक्षा भारत में न करवाने की घोषणा ने पढ़े-लिखे नवयुवक वर्गों में निराशा पैदा की। इस प्रकार भारतीय व्यापरियों ने प्रशुल्क तथा कपास डयूटीस् एक्ट 1894 तथा 1896 का भारी विरोध किया। महाराष्ट्र के 1896 के अकाल तथा विपरीत सरकारी नीति ने हालात को और अधिक बद्तर बना दिया। तिलक तथा चापेकर भाईयों जैसे राष्ट्रवादी नेताओं पर सरकार ने रैंड तथा एयर्स्ट जैसे बदनाम ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या के लिए मुकदमें चलाए। नाथू तथा हरी को बिना किसी कारवाई के जेल में बंद रखा तथा उनकी संपत्तियां जब्त कर ली गईं।

नौजवान या युवा वर्ग प्रेस पर पाबंदी (1904) तथा विश्वविद्यालय एक्ट (1904) से भी नाखुश था क्योंकि अब सरकार का कठोर नियंत्रण विश्वविद्यालयों पर लागू कर दिया गया था। इसी दौरान जापान की रूस पर विजय (1904-05) ने युवाओं में नये जोश का संचार कर दिया था क्योंकि पहली बार एक छोटे से एशियाई देश ने यूरोप की महाशक्ति को पराजित किया था। इसी बीच बंग-भंग या बंगाल विभाजन ने बंगालियों को एक बहुत बड़ा झटका दिया। पूरे भारत में क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार-पत्रों की वितरण की संख्या 1859 में 2,99,000 से बढ़कर 1905 तक 8,17,000 हो चुकी थी सभी कांग्रेस की नरमपंथी विचारधारा का विरोध करती थी। इन सबने क्रांतिकारी आंदोलन की नींव रखी।

भारत के पूर्वी तथा पशिचिमी हिस्से जो अन्य भागों से अधिक राजनीतिक सक्रिय थे, महाराष्ट्र तथा बंगाल वहीं पर यह क्रांतिकारी आंदोलन शुरू हुआ तथा विचारधारा सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से भी यह दोनों इलाके काफी सक्रिय थे। धीरे-धीरे यहां से होता हुआ क्रांतिकारी आंदोलन भारत के अन्य भागों में भी फैला तथा भारत के बाहर भी इसका प्रसार हुआ। अनेक गुप्त संस्थायें बनीं, पत्र-पत्रिकाएं छपना प्रांरभ हुईं। बम खरीदने तथा हथियारों की ट्रेनिंग देने के लिए क्रांतिकारियों ने स्वदेशी डकैतियां कीं, जिसका मुख्य उद्देश्य बदनाम तथा क्रूर ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या करना था, जिससे कि उनके मन में भय बैठ जाए तथा भारतीय भय-मुक्त हो सकें परंतु यह सब उपनिवेशवाद को भारत से समूल नष्ट करना था।

क्रांतिकारी पत्रिकाएं युगांतर तथा संध्या पूर्वी भारत में जोर-शोर से ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लिख रही थी। कलकत्ता में 1902 में पुरुषोत्तम मित्रा, जतीन्द्रनाथ बेनर्जी तथा बरींद्रकुमार घोष ने अनुशीलन समिति की स्थापना की, जो भारत में पहली क्रांतिकारी संस्था थी, खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर के जज को मारने के लिए बम फेंका, जिसमें केनेडी परिवार की दो महिलाएं मारी गईं। प्रफुल्ल चाकी ने तो आत्महत्या कर ली, बोस को बाद में फांसी की सजा हुई। इसी प्रकार 21, दिसम्बर 1909 को अभिनव भारत के क्रांतिकारियों ने नासिक के न्यायाधीश जैकसन की हत्या कर दी थी।

ब्रिटिश सरकार ने बढ़ते हुए क्रांतिकारी आंदोलन पर रोक लगाने के लिए अनेकों दमनकारी कानूनों का सहारा लिया जिसमें कुछ प्रमुख थे—प्रिवेंशन ऑफ सेडिशियस मीटिंग एक्ट (1907), दि एक्सप्लोसिव सब्सटेंट्स एक्ट (1908), दि इंडियन क्रिमिनल एमेंडमेंट एक्ट (1908), तथा प्रेस एक्ट (1910)। गिरफ्तारी से बचने के लिए अनेक क्रांतिकारी विदेश चले गए। कृष्ण वर्मा ने 1905 में 'इंडिया हाउस' की स्थापना लंदन में की तथा अपनी पत्रिका 'इंडियन सोशालोजिस्ट' के द्वारा वह क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करते रहे। अनेक क्रांतिकारियों, जैसे—मदनलाल ढींगरा, वी.डी. सावरकर, लाला हरदयाल ने एक मंच पर इकट्ठे होकर अपनी कार्रवाइयां तेज कर दीं। जुलाई 1909, में मदनलाल ढ़ींगरा ने कर्नल विलियम कंर्जन वेली को गोलियों से छलनी कर दिया, जो लंदन में ब्रिटिश अफसर था। मेडम भीकाजी कामा ने, जो पारसी थी; ने पेरिस तथा जेनेवा में क्रांतिकारी आंदोलन चलाया तथा वह फ्रांसीसी समाजवादी नेता जीन लोगेंट के सपंर्क में भी आई। उन्होंने 'वंदे मातरम्' पत्रिका का संपादन भी किया।

पंजाब के कुछ क्रांतिकारियों ने मिलकर गदर पार्टी की स्थापना की, ये थे—लाला हरदयाल, सोहन सिंह भाखना, रामचंद्र तथा बरकतउल्ला। इन्होंने 'गदर' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन आरंभ किया, जो उर्दू तथा पंजाबी भाषाओं में छपता था। हरदयाल को अमेरिका छोड़ना पड़ा तथा वह बर्लिन (जर्मनी) में जा कर बस जाए। वहां उन्होंने 'इंडिया इंडिपेंडस कमेटी' की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य था भारत के बाहर नवयुवकों में सशस्त्र क्रांति का आह्वान करना, जिससे कि ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिल सके। यह भी एक कारण था कि यूरोप में रहने वाले क्रांतिकारियों को आयरिश रिपब्लिकन आर्मी तथा कम्यूनिस्टों से सहयोग मिलता रहता था इसलिए वह जोश में आकर इस तरह के कदम उठाने की हिम्मत करते थे।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् क्रांतिकारी मार्क्सवाद से काफी प्रभावित हुए तथा रूस में हुई बोल्शविक क्रांति ने उन्हें नई प्रेरणा दी। वह मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी सफलता से प्रभावित होकर असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए तथा उन्होंने गांधी जी तथा कांग्रेस की भूमिका से प्रभावित हो गांधी जी को अपना नेता मान लिया था। यह सभी नवयुवक जो उत्साहित थे—जोगेश चंद्र चटर्जी, सूर्य सेन, जतिन दास, चंद्र शेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव शिव वर्मा, भगवती चरण वोहरा तथा जयदेव कपूर—इन सभी ने असहयोग आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। परंतु अचानक असहयोग आंदोलन की समाप्ति ने इन सभी लोगो की उम्मीदों पर पानी फेर दिया।

वे न सिर्फ गांधी जी के सत्याग्रह तथा अहिंसा के तरीके से अप्रसन्न हुए परंतु लोकतांत्रिक तरीकों से स्वतंत्रता प्राप्त करने से भी उनका मोह-भंग हो गया तथा वह स्वराजवादियों की रणनीति से भी खुश नहीं थे तथा अब क्रांतिकारियों ने अपने ढंग से आजादी प्राप्त करने का निश्चय किया। इसके लिए अक्तूबर, 1924 में कानपुर में कुछ क्रांतिकारियों—राम प्रसाद बिस्मिल, जोगेश चटर्जी, सचिन्द्रनाथ सान्याल इत्यादि ने हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिशयन या (आर्मी) की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य था—भारत में औपनिवेशक राज्य का अंत कर भारतीय संघवाद का निर्माण करना, जिसमें सभी को वोट डालने का या निर्वाचन का अधिकार प्रदान किया जाएगा। इसके सदस्य काकोरी रेल षड़यंत्र में भी शामिल रहे, जिसमें अशफाक उल्ला ख़ान, रोशन सिंह तथा राम प्रसाद को फांसी की सजा सुनाई गई और अन्य कई को उम्र कैद हुई। एच.आर.ए. का नवीकरण हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिशयन (एच.एस.आए.ए) के रूप में फिरोजशाह कोटला, 1928 में हुआ, जब चंद्रशेखर आजाद की अध्यक्षता में भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा, जयदेव कपूर, शिव वर्मा तथा बिजोय कुमार सिन्हा ने एक गुप्त मिशन में भाग लिया। इन लोगों के लिए क्रांति मात्र गोली और बम का ही विकल्प नहीं था अपितु वह समाज में बदलाव के लिए उपनिवेशवाद तथा पूंजीवाद को समाप्त कर मजदूरों की तानाशाही का राज्य स्थापित करना चाहते थे।

एच.एस.आर.ए के सदस्य लोगों के द्वारा क्रांति लाना चाहते थे। लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए वे पब्लिक सेफ्टी बिल तथा ट्रेड डिस्प्यूट बिल जो लोगो में अलोकप्रिय थे भगत सिंह तथा बटुकेशवर

दत्त ने 8, अप्रैल 1929 को केंद्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में इसके विरोध में बम फैंका। इस बम ने किसी को भी हताहत या घायल नहीं किया तथा अपने आप को गिरफ्तारी से बचाने के लिए वह वहां से भागे नहीं क्योंकि उनका मानना था कि यह बम बहरे कानों को सुनाने के लिए फैंका गया तथा उन्होंने कुछ भी गलत नही किया। इन क्रांतिकारियों ने अपने केस की कारवाई के दौरान काफी जोशीला प्रदर्शन किया तथा अनेक नारे जो देशभक्ति तथा धर्मनिरपेक्षवाद से प्रेरित थे लगाए जैसे—इंकलाब जिंदाबाद, सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, मेरा रंग दे बंसती चोला, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद, मजदूर क्रांति अमर रहे इत्यादि। उस समय के सभी समाचार-पत्रों ने उनकी इस कारवाईओं का फोटो छापकर एक तरह से इन लोगों के सघंर्ष को अमर बना दिया। भगत सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को 23 मार्च, 1931 को फांसी की सजा हुई तथा चंद्रशेखर आजाद इससे पहले ही 27 फरवरी, 1931 को पुलिस मुठभेड़ में मारे जा चुके थे तथा जतिन दास की 64 दिनों के उपवास के कारण मृत्यु हो चुकी थी।

इसी प्रकार 18, अप्रैल 1930 को चटगांव (अब बांग्लादेश में) शस्त्रागार में क्रांतिकारियो ने सूर्य सेन के नेतृत्व में हमला बोला। इन्होंने लगभग चार स्थानों पर यूरोपीयों पर हमले किए। इनमें अन्य शामिल सदस्य थे—अंबिका चक्रवर्ती, अन्ना सिंह, लोकनाथ बाउल, गणेश घोष, आनंद गुप्ता, तेगरा बाल, कल्पना दत्त तथा प्रीतिलिता वाडेकर। इन्होंने इस कार्रवाई में शास्त्रागार से अनेक (लुई गन) राईफलें लूटीं परंतु वह अपने साथ कारतूस ले जाना भूल गए। पुलिस की जवाबी कार्रवाई में काफी क्रांतिकारी शहीद हुए परंतु उसमें से काफी बच निकलने में भी सफल रहे।

भगत सिंह की शहादत तथा उसके अनेक साथियों के अंत होने के कारण भारत में सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन का लगभग अंत हो गया। अनेकों क्रांतिकारी अब मार्क्सवाद, समाजवाद तथा गांधीवाद धारा की ओर मुड़ गए। हांलाकि क्रांतिकारी कोई बहुत बड़ा जन-आंदोलन तो चलाने में सफल नहीं हुए परंतु उनके बलिदान ने आम लोगों में देश के लिए प्यार व बलिदान की भावना को अधिक प्रखर किया तथा उस काल में लाखों भारतीयों के दिलों से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भय निकाल उन्हें भयमुक्त कर दिया।

प्रश्न 5

उन्नीसवीं शताब्दी में महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार कानून पारित किये जाने के कारण भारतीय नेताओं ने किस प्रकार की संवेदनाएं व्यक्त कीं? *(2006)*

उत्तर 5

ईस्ट इंडिया कंपनी के अनेक अधिकारी भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को कानून द्वारा समाप्त करना चाहते थे परंतु शुरुआत में वह इसके प्रति असहज रहे क्योंकि 1813 तक कंपनी का मुख्य उद्देश्य व्यापार तथा उससे मिले लाभ तक ही सीमित होना था। वह अन्य मामलों में अभी ज्यादा धार्मिक तथा सामाजिक आधार को भारत में छोड़ना नही चाहती थी तथा अंग्रेजों को भी यह भय था कि उनके द्वारा कोई कदम उठाने के कारण भारतीयों पर इसका विपरीत असर न पड़े तथा लोगो में उनके विरुद्ध विद्रोह न भड़क उठे।

इंग्लैंड में शासन कर रही कंजरवेटिव पार्टी अभी इन मुद्दों को वैसा ही रहने देना चाहती थी। इसके लिए गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स तथा प्राच्यवादी एच.एच. विलसन उनका समर्थन करते थे। यह लोग इस बात को मानते थे कि अभी भारत में कला, साहित्य तथा धर्म को ही बढ़ावा देना ठीक है परंतु लोगों के विश्वासों तथा आस्थाओं के बारे में अभी छेड़छाड़ करना ठीक नहीं होगा। बनारस के रेजिडेंट जोनाथन डंकन, ने स्त्री भ्रूण हत्या को रोकने की कोशिश की थी तथा गवर्नर जनरल वेल्जली के कुछ अधिकारियों ने सती प्रथा पर रोक लगाने की कोशिश भी की थी परंतु यह समाज में कुछ अधिक बदलाव नही ला सके तथा सामाजिक बुराइयां उसी प्रकार भारतीय समाज में जारी रहीं। परंतु ऐवेंजिकल रेडिकल तथा यूटिलेटेरियन्स ने कंजरवेटिव की। इस नीति की तीव्र भर्त्सना की ऐवेंजिकल इस बात में विश्वास करते थे कि ईसा के धर्म का प्रचार करना उनका मौलिक कर्त्तव्य है तथा वह लोगों की मूर्ति पूजा, अंधविश्वासों तथा सामाजिक कुरीतियों को छोड़ने को कहते थे।

इसी प्रकार रेडिकल तथा ऐविंजिकल बेथम की उस नीति में विश्वास रखते थे, जिसके अनुसार अच्छे कानूनों को लागू करने से समाज में सुधार की प्रक्रिया स्वतः ही शुरू हो जाती है।

जेम्स मिल इतिहासकार, जिसने भारत का इतिहास (1818) में लिखा, ब्रिटिश सरकार को अपनी सोच बदलने के लिए बाध्य किया। इसी प्रकार ब्रिटिश प्रशासन के भारत में कई उदारवादी ऐलिफेन्टस चार्ल्स मेटकाफ तथा जान मेलकाम जैसे व्यक्तियों ने भी दबाव समूह का कार्य करते हुए सरकार को समाज-सुधार कार्य करने को और भी बाध्य किया। इस प्रकार गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंन्टिक ने इस समाज सुधार कार्यक्रम को अपने हाथ में लिया।

यह भारत के लिए अच्छा रहा, जब उदारवादी तथा प्रतिक्रियावादी भारत में समाज सुधार का समर्थन कर रहे थे तभी ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी इन सुधारवादियों का ही बोलबाला था। इसी प्रकार सुधारवादी भारतीय भी अपना समर्थन इन ब्रिटिश अधिकारियों को दे रहे थे। राजा राममोहन राय तथा उसके समर्थन वर्ग के लोगों ने सरकार की प्रतिक्रियास्वरूप अनेकों प्रार्थना-पत्र सरकार के सामने रखे, जिससे कि वह समाज-सुधार के लिए कानून बनाएं तथा भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िवाद को समाप्त करने में सहयोग दें।

इसी प्रकार रूढ़िवादियों ने भी सरकार की इस नीति का विरोध करना प्रारंभ किया, जिसमें सती का समर्थन सबसे अधिक मुखर था। विलियम बेन्टिक की सरकार उदारवादी तथा प्रतिक्रियावादी ताकतों के साथ मिलकर ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन में सन् 1829 में एक प्रस्ताव पारित करने में सफल रही कि सती प्रथा को अब दंडनीय अपराध माना जाएगा तथा सती प्रथा को बढ़ावा देने वालों पर अब पांबदी, जुर्माना के साथ हत्या करने का भी अभियोग लगाया जाएगा। इस कानून के पास होने के बाद सती कानून को बंबई तथा मद्रास में भी 1830 में लागू कर दिया गया।

विलियम बेन्टिक की सरकार ने ठगी प्रथा, कन्या हत्या तथा प्राचीन प्रथा गुलामी पर भी प्रतिबंध लगाया। बाद में बलि-प्रथा का अंत किया गया, जो गोंड समुदाय में काफी प्रचलित थी। लार्ड डलहौजी के गवर्नर-जनरल काल में ही महत्वपूर्ण कानून जो समाज सुधार से संबधित थे बनाए गए पहला विधवा पुनर्विवाह अधिनियम तथा दूसरा स्त्री संपत्ति अधिग्रहण अधिनियम-1856।

इस कानून के अनुसार अगर स्त्री अपना धर्म परिवर्तन भी कर लेती है तो भी संपत्ति पर उसका अधिकार कायम रह सकता है। हांलांकि यह कानून धर्म-परिवर्तन को प्रोत्साहित करता था परंतु फिर भी हम यह कह सकते हैं इसके पीछे सोच अच्छी थी तथा स्त्री को समान अधिकार देने की बात कहकर उन्हें समाज में अच्छा स्थान देने की कोशिश थी।

विधवा विवाह कानून के द्वारा समाज में फैली कुरीति बाल विवाह तथा कुलीनम (एक व्यक्ति की कई पत्नियां) पर अंकुश लगाने में सहायता मिली। राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारक तथा अन्य भारतीय भी विधवा-विवाह के कानून के पक्ष में थे राजा-राम मोहन राय ने विधवाओं की व्यस्था को अपने पेपर 'दि मार्डन एनक्रोचमेंट ऑन दा एंशीएंट राईट्स आफ फीमेल्स' में लिखा था। इसी प्रकार कुछ अनब्याही ब्राह्मण कन्याओं ने सरकार तथा सुधारवादियों के सामने समाचार नामक पत्रिका के द्वारा इस कानून को पास करने का आह्वान किया।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक महान धर्म तथा समाज सुधारक ने भी अपनी शोध पत्रिका, तत्त्वबोधिनी के द्वारा विधवा-पुनर्विवाह के लिए सरकार को प्रोत्साहित किया।

उन्होंने लार्ड डलहौजी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि इस अधिनियम को जल्दी लाया जाए। इसके लिए उन्होंने जोर-शोर से प्रचार भी आरंभ किया। इसी बीच रूढ़िवादियों ने लार्ड डलहौजी तथा सरकार पर यह दबाव बनाया कि वह इस प्रस्ताव को कानूनी मान्यता न दे परंतु लार्ड डलहौजी की सरकार ने विधवा-विवाह कानून को एक मान्यता दे दी तथा 26 जुलाई, 1856 को यह कानून पास कर दिया। परंतु यह आश्चर्य का विषय रहा कि बाद में लोकमान्य तिलक ने इसका भी विरोध किया था।

1860 में लार्ड केनिंग के गवर्नर-जनरल काल में एक कानून द्वारा शादी की उम्र को बढ़ा दिया गया यह अब कन्याओं के लिए 10 वर्ष की कर दी गई। बी. राम मालाबारी जैसे समाज-सुधारक ने अपनी पत्रिका 'इंडियन स्पेक्टेटर' में इस तथ्य पर जोर दिया कि बाल विवाह हिंदु समाज तथा जाति का पूर्ण रूप से ह्रास कर रहा है। इसके प्रयासों से सन् 1841 में भारतीय विवाह अधिनियम में विवाह की आयु 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दी।

सन् 1872 में हिंदु विवाह के अंतर्गत बहुविवाह प्रणाली समाप्त की गई, विधवा तथा अंतर्जातीय विवाह को बढ़ावा मिला।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज-सुधारकों तथा भारतीय पढ़े-लिखे वर्ग ने कंपनी सरकार के द्वारा किए जाने वाले समाज-सुधार कानूनों को अपना समर्थन दिया परंतु रूढ़िवादियों ने निरंतर इसका विरोध किया तथा इसके विरोध में आर्य समाज जैसी संस्थाओं ने भारतीय समाज में समाज-सुधार आंदोलन की बड़े पैमाने पर शुरुआत की थी।